ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 95-98
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-I, Issues-35, YEAR-Jan-Mar. 2025

गीता में निहित स्वर्णिम सांस्कृतिक चेतना

डॉ0 बन्दना सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर–संस्कृत विभाग,श्री जयनारायण मिश्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ (उ0प्र0) भारत

Received-26.01.2025, Revised-03.02.2025, Accepted-10.02.2025 E-mail : bandanadsn@gmail.com

सारांशः *विश्व का एकमात्र प्रतिष्ठित ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता का सांस्कृतिक चेतना में सार्वकालिक महत्व है। भगवद्गीता को गीतोपनिषद् भी कहा जाता है। यह वैदिक ज्ञान का सार है और वैदिक साहित्य का महत्वपूर्ण उपनिषद् है। भगवद्गीता का मर्म गीता में व्यक्त है। जिस प्रकार यदि हमें किसी औषधि विशेष का सेवन करना हो तो उस पर लिखे निर्देशों का पालन करना होता है। इसी प्रकार गीता को वक्ता द्वारा दिये गये निर्देशानुसार ही ग्रहण या स्वीकार करना चाहिए। इसके वक्ता स्वयं भगवान कृष्ण हैं। भगवद्गीता की विषयवस्तु में पाँच मूल सत्यों का ज्ञान निहित है ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल तथा कर्म। गीता की विचार सम्पत्ति अद्भुत है जहाँ साधक के उपयोग की पूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। चाहे वह किसी भी देश, समुदाय, सम्प्रदाय, वर्ण तथा किसी भी आश्रम का हो। इसमें वर्णित सांस्कृतिक चेतना सभी के लिए सर्वमान्य है। आधुनिक युग वैज्ञानिक प्रगति, सूचना, व संचार क्रान्ति का युग है। गीता में उपदिष्ट विश्व बन्धुत्व का उपदेश संसार को दिशा एवं दृष्टि दे सकता है। गीता का परम् उद्देश्य लोक संग्रह है। उसमें मानव ही नहीं अपितु सम्पूर्ण प्राणिमात्र के हित की कामना की गयी है– "सर्वभूत हितेरताः"*

गीता के उपदेशों में वह उदात्तता है जो भारतीय विचारकों की अपनी विशेषता है। गीता सभी में ईश्वर को देखना तथा स्वार्थ एवं परार्थ का समन्वय स्थापित किया है। जिसमें स्वर्णिम सांस्कृतिक दृष्टि स्पष्टतः परिलक्षित होती है।

विद्या विनम सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हास्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।[1]

कुंजीभूत शब्द– स्वर्णिम सांस्कृतिक चेतना, उपनिषद्, समन्वय, निष्काम कर्मयोग, तत्वज्ञान, लोकसंग्रह, यज्ञ, दान, स्वकम

विश्व का एकमात्र प्रतिष्ठित गेय दार्शनिक काव्य, जीवन और जीवनोत्तर का प्रेरक तथा अनुभूत ज्ञान राशियुक्त पूर्ण साधनाशास्त्र के रूप में श्रीमद्भगवद्गीता का सार्वकालिक महत्व है। लगभग 700 श्लोकों वाली गीता ही ज्ञानयोगी शंकराचार्य कर्मयोगी लोकमान्य तिलक, भक्तियोगी रामानुजाचार्य, अहिंसाव्रती महात्मागाँधी, योग समन्वय उपदेष्टा अरविन्द घोष, युग निर्माता स्वामी विवेकानन्द इत्यादि भारतीय सांस्कृतिक महापुरुषों का प्रेरणास्रोत बनी। वर्तमान में यह हम पर निर्भर है कि गीता में निहित स्वर्णिम सांस्कृतिक चेतना से हम स्वयं किस रूप में जीवन शक्ति और जीवन दृष्टि ग्रहण करते हैं।

हमारी भारतीय संस्कृति मूलतः वेदों पर आधारित है। वेद साधारणतया चार मंत्र संहिताओं का सामूहिक नाम है। परन्तु वास्तव में इससे अभिप्रेत है– 'ज्ञान' अर्थात, लौकिक और अलौकिक अनुभवों, अनुभूतियों का अनन्त भण्डार। चार संहिताओं में उपनिषद् आध्यात्मिक ज्ञान की अन्यतम शेवधि है। यह वह ज्ञान है, जो साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों की उच्चतम मनीषा की देन है। उपनिषदो की सहस्र दुग्धधाराओं का अमृत ही ''गीता अमृत' है–'दुग्धं गीतामृतम् महत्'' गीता के इन अमृततत्व के प्रति सफलता या सिद्धि प्राप्त साधक का मन श्रद्धा को अभिव्यक्त करता हुआ कहता है–

'' एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम''।
''गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः'' इत्यादि।

गीता केवल मोक्षशास्त्र नहीं है, वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मार्गदर्शन करने वाला 'धर्मशास्त्र ''भी है। यह बड़ा भ्रम है कि गीता को वृद्धावस्था में मोक्ष लाभ के लिए पढ़ना चाहिए। गीता में बाल्यावस्था और युवावस्था में जीवन संघर्ष के विजयी योद्धा बनने के लिए पठनीय, मननीय और आचरणीय है। आधुनिक मनुष्य ने चन्द्रमा तक पहुँचने के लिए कठोर संघर्ष किया है लेकिन उसने अपने आध्यात्मिक उत्थान के लिए कठिन प्रयास नहीं किया। यदि मानव को स्वर्णिम सांस्कृतिक चेतना प्राप्त करनी है तो कुछ समय गीता अध्ययन में अवश्य लगाना चाहिये।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।[2]

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य साहित्य है, जिसको ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिएः

''गीता शास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत् प्रयतः पुमान् ।''

यदि कोई गीता के उपदेशों का पालन करें तो वह जीवन के दुःखों और चिन्ताओं से मुक्त हो सकता है। 'भयशोकादिवर्जितः ' वह इस जीवन में सारे भय से मुक्त हो जाएगा।[3]

धर्म–संस्थापना– ध्येयनिष्ठ महापुरुष युग–युग में पृथ्वी पर आते हैं ताकि धर्म की ग्लानि और अधर्म की उन्नति के विरुद्ध संघर्ष करके धर्म–संस्थापना की जा सके। गीता कहती है–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।[4]

'धर्म की ग्लानि' अर्थात अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करने की व्यापक सामाजिक प्रवृत्ति। अधर्म की उन्नति अर्थात भ्रष्टाचार व पापों में लिप्तता। आधुनिक समाज में भी यह धर्म ग्लानि स्पष्टतः परिलक्षित होती है और धर्म संस्थापना के लिए निरंतर प्रयत्नशील ध्येयनिष्ट जीवनव्रतियों को भी देखा जा सकता है। धर्म–चक्र–प्रवर्तन की उपेक्षा करने वाले असुरों के लक्षण के विषय में श्री कृष्ण बताते हैं–उनमें अपवित्रता, श्रेष्ठ आचरण का अभाव, असत्य बोलने का दुर्गुण, दंभ–मान, मद–युक्तता, काम–क्रोध परायणता, अन्यायपूर्वक धन संचय की प्रवृत्ति इत्यादि से युक्त होते हैं:

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ।।[5]

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वा सद्ग्राह्यान्प्रवर्ततेऽशुचिव्रताः ।।[6]
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ।।[7]
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।[8]

गीता में उपदिष्ट इन आसुरी संपदा से पृथक दैवी संपदा वाले होते हैं। सत्य ज्ञान, अहिंसा, अक्रोध, त्याग, पवित्रता, क्षमा, अहंकारशून्यता और तेजस्विता उनके विशेष गुण हैं। अपने इन्हीं गुणों के आधार पर ही वे असुर शक्तियों पर विजय प्राप्त करते हुए धर्मसंस्थापना का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता के दशवें अध्याय को विभूति योग' कहा जाता है। इसमें महत्वपूर्ण सांस्कृतिक सूत्र निहित है। मनुष्य समाज में सामान्यतः आत्मा या परमात्मा की महिमा को विलक्षण शक्ति या विभूति ही प्रकट करती है। स्वामी विवेकानन्द की विभूति 1893 ई० में शिकागों के 'विश्वधर्मसंसद' में परिलक्षित हुई। जिसे सभी ने नतमस्तक होकर स्वीकार किया। अतीत की इन विभूतियों से सांस्कृतिक सूत्रों को ग्रहण करना आवश्यक है। गीता बताती है कि गुणियों के गुणों में विभूतियों को जानना भी आवश्यक है। ऐसे ही आध्यात्मविद्या विधाओं में श्रेष्ठ है, जपयज्ञ यज्ञों में श्रेष्ठ है, मंत्रों में गायत्री श्रेष्ठ है, ध्वनियों में अकार श्रेष्ठ है, नदियों में गंगा श्रेष्ठ है, स्थावरों में हिमालय श्रेष्ठ है, यह सब जो कृष्ण बताते हैं वह अत्यन्त अर्थपूर्ण और जीवनोपयोगी है। ईश्वरीय विभूतियों को गीता अनंत बताती है और विभूति को पहचानने के लिए उसका व्यापक लक्षण और कारण बताती है:

यद्यद्विभूतिमत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसंभवम्।। [9]

योगेश्वर और धनुर्धर – उत्कृष्ट इतिहास का निर्माण जो सांस्कृतिक शक्ति करती है, उसके दो प्रतीक 'योगेश्वर कृष्ण' और 'धनुर्धर पार्थ' के रूप में गीता के अन्तिम श्लोक में व्यक्त हुआ है:

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिमम्।।[10]

एक उत्कृष्ट मार्गदर्शक और उसका अनन्य अनुयायी ये दोनों रूप कृष्ण और अर्जुन ही कभी 'राम और हनुमान' कभी 'समर्थ रामदास और शिवाजी' कभी 'विरजानन्द और दयानन्द, आदि रूपों में और कभी समष्टि रूपों में गौरवमय इतिहास बनाते हैं। इतिहास वाह्य नामरूप को देखता है, आध्यात्मिक दृष्टि उनके तात्विक रूप को देखती है।

शिष्य को सच्चा गुरु चाहिए और गुरू को सच्चा शिष्य। ज्ञानधारा के प्रवाह के लिए यह अत्यन्त अनिवार्य है। शिष्य में ज्ञान प्राप्ति हेतु शरणागति की भावना, सच्चा जिज्ञासुभाव का होना अनिवार्य है यही भारतीय संस्कृति की दृष्टि है। गीता के प्रथम व द्वितीय अध्याय में वर्णित है अर्जुन की तर्कपूर्ण और मोह विह्वल ज्ञानाभासी वाणी परन्तु कृष्ण उनके किसी बात का उत्तर देते नहीं दिखाई देते। अन्ततः अर्जुन कहते हैं – इस समय मेरा चित मोहित है, अपना कर्तव्य निश्चित कर पाने में मैं असमर्थ हैं "धर्मसंमूढ़चेताः" मैं आपका शिष्य हूँ– "शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्"।[11] तदनन्तर भगवान् कृष्ण इसे अपना कर्तव्य मानते हैं कि वह ऐसे योग्य शिष्य को श्रेष्ठ ज्ञान दें। भगवान कृष्ण ने शोकयुक्त अर्जुन का मार्गदर्शन करते हैं:

इसके माध्यम से श्रीकृष्ण अश्रुपूर्ण और व्याकुल नेत्रों वाले अर्जुन को प्रोत्साहित करने हेतु प्रयत्न किया था । और यह उद् बोधन निराश हृदयों को आज भी उत्साहित करने में उतना ही तीक्ष्ण और समर्थ है– क्लैव्य को त्यागो यह तुम्हारे योग्य नहीं हैं, दम की दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिए उठोः

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं व्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप।।[13]

यहाँ 'उत्तिष्ठ' शब्द प्रभावी और पूर्व परम्परा का स्मरण कराने वाला है।' 'उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधतः' में भी यही उद् बोधन है जिसे स्वामी विवेकानन्द ने उठो, जागो और लक्ष्य की प्राप्ति तक बढ़ते रहो" में विकसित किया था। तत्वदर्शी महापुरूष से ज्ञान प्राप्त करने की विधि बताते हुए कृष्ण ने कहा थाः

तद्विद्धि प्राणिवातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः।।[14]

गीता ज्ञान के महत्व का प्रतिपादन करती हुई कहती है कि तत्वज्ञान की अनन्त महिमा है। ज्ञानरूपी अग्नि सभी कर्मों को भष्म कर मनुष्य को पूर्णतः पवित्र बना देती है। जितेन्द्रिय और श्रद्धावान् शिष्य ही इस ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। संशय से मनुष्य की शक्ति घटती है और तत्वज्ञान से संशय मिटने के साथ ही शान्ति मिल जाती है। तत्वज्ञान की प्राप्ति के लिए 'श्रद्धा' आवश्यक है। 'श्रद्धा' का अर्थ है – 'श्रत' अर्थात 'सत्य' को धारण करने का गुण। मानव श्रद्धायुक्त है। सभी की श्रद्धा अपने–अपने स्वभाव के अनुसार होती है जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वह वैसा ही होता है:

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।[15]

इसीलिए श्रीकृष्ण सावधान करते हैं– ज्ञानियों को चाहिए कि किसी की श्रद्धा भंग न करें। भिन्न मतावलम्बियों द्वारा धर्मान्तरण कराने को भारतीय संस्कृति अधम कर्म मानती है। इसके पीछे पूर्ण तत्वज्ञानी कृष्ण का ही उपदेश है क्योंकि प्रत्येक साधना मार्ग परमात्मा तक पहुँचा सकता है, महत्व साधना का है।

भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण सूत्र है– विचार की स्वतंत्रता। तत्वज्ञानी गुरु शिष्य को ज्ञान देता है, परन्तु उसके विचार स्वातंत्र्य को नहीं छीनता है। गीता में कृष्ण ने भी अर्जुन से अपनी बात कहने के बाद यही कहा था–ज्ञान तो तुम्हें दे दिया लेकिन इस पर स्वतः पूर्ण विचार स्वयं करोः

विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।[16]

ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-I, Issues-35, YEAR-Jan-Mar. 2025

भारतीय संस्कृति मनुष्य–मनुष्य की पात्रता या अधिकार भेद को मानती है और उपासनामार्गो की विविधता और उन्हें वरण करने की पूर्ण स्वतंत्रता देती है। ज्ञानयोग, भक्तियोग या ध्यानयोग इत्यादि या निवृत्तिमार्ग या प्रवृत्तिमार्ग अथवा किसी इष्टदेव की पूजा सभी यहाँ स्वीकृत है। इस पूर्व दृष्टि में किसी भी देवता के प्रति नमस्कार एक परमात्मा के लिए ही नमस्कार है–

सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति।

श्रीमद्भगवद्गीता में व्यक्ति और समाज दोनों के हितकारी पद्धति के रूप में 'कर्मयोग' का महत्व प्रतिष्ठित है। गीता जीवन की कला को 'कर्मयोग' कहती है और गीता 'कर्मयोग' का प्रमुख शास्त्र है। कर्मयोग के सूत्रों को श्रीकृष्ण के इस प्रकार बताया है –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा मा फलेषु कदाचन।
कर्मफलहेतुर्भूर्माः ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।[17]

निष्काम व निःस्वार्थ भाव से कर्तव्य मात्र समझकर लोकहित के सभी कार्यों को करने में प्रवृत्त होना ही कर्मयोग है। महात्मागांधी और लोकमान्य तिलक तो कर्मयोगी थे ही। गीता को कर्मयोग का नहीं 'ज्ञानयोग' का शास्त्र मानने वाले आदि शंकराचार्य भी 'कर्मयोगी' थे। गीता को 'भक्तियोग' का शास्त्र बताने वाले रामानुजाचार्य भी कर्मयोगी थे। समाज का प्रत्येक निःस्वार्थ समाजसेवी महापुरुष 'कर्मयोगी ही होता है।

गीता में निहित स्वर्णिम सांस्कृतिक चेतना में लोकसंग्रह का महत्वपूर्ण स्थान है। उत्त्च श्रेणी के अनुकरणीय महापुरुषों को भी लोककल्याण के लिए सामान्य जन की तरह ही उपासना, यज्ञ, दान, तप आदि कार्य उत्तम रीति से करना चाहिए। स्वयं योगेश्वर होने पर भी कृष्ण प्रातः–सायं नियमपूर्वक उपासना करते थे। इसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुषों को भी वह सब करना चाहिए जिसकी वह समाज में अपेक्षा करते हैं। कृष्ण कहते हैं – श्रेष्ठ पुरुष जो–जो आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण बना देते हैं लोग भी उनके अनुसार व्यवहार करते हैं –

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत् तदेवे जनाः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।[18]

वर्तमान में समाज के प्रत्येक व्यक्ति को इसका अनुशरण करके अपने– 2 चरित्र व स्वभाव को इस सूत्र के द्वारा उत्तम बनाया जा सकता है।

भारतीय संस्कृति में यज्ञ, दान और तप का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। गीता में कृष्ण ने यज्ञ दान, और तप को प्रत्येक व्यक्ति हेतु प्रत्येक अवस्था में आचरणीय बताया है। क्योंकि वे मनीषियों को भी पवित्र करने वाले हैं–"पावनानि मनीषिणाम्"। कृष्ण इनके सात्विकरूप को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। इसी प्रकार वे सात्विक आहार को भी श्रेष्ठ मानते हैं। मिथ्याचार आडम्बर और दंभ के वे विरोधी हैं। कृष्ण की दृष्टि कितनी समाजपयोगी और सूक्ष्म है तथा भाषा भी सरल है। यह उनके द्वारा दान के विवेचन में देखा जा सकता है। वे कहते हैं– दान देना ही कर्तव्य है, ऐसे भाव से देश–काल और पात्र की उचितता देखते हुए और प्रत्युपकार न करने वाले के लिए जो दान दिया जाता है, वही सात्विक दान है। इसी प्रकार वे कहते हैं– जो दान बिना सत्कार किए या तिरस्कार पूर्वक अयोग्य देश और काल में तथा कुपात्रों को दिया जाता है वह तामस दान है–

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकम् स्मृतम्।।[19]
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ।। [20]

भारतीय संस्कृति में भेदभाव की भावना स्वीकार्य नहीं है। यहाँ तो ब्रह्म् प्राप्ति करने वाले ब्राह्मण का सर्वोच्च महत्व है चाहे वह वशिष्ट हो या ऋषभदेव, महावीर, गौतम बुद्ध आदि। ऐसे तत्वदर्शी महापुरुष सबके लिए बंदनीय है और ऐसे तत्वदर्शियों के लिए विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चांडाल में भी समभाव वाली दृष्टि होती है।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
श्वानि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।[21]

सभी में चैतन्य आत्मा व परमात्मा को देखने की तात्विक दृष्टि ही समदृष्टि है। समाज के प्रत्येक मनुष्य के सुख–दुःख के साथ सुख–दुःख को अनुभव करने वाली सहानुभूति हमारे तत्वज्ञान पर ही आधारित सांस्कृतिक सूत्र है। दरिद्र नारायण की उपासना में दरिद्रता' पर नहीं 'नारायणत्व' पर भी ध्यान देने से ही सेवा कार्य का स्वरूप सात्विक और आध्यात्मिक हो जाता है। श्रीकृष्ण ने गीता में ' सर्वभूतहितेरताः' साधकों को बार–बार अपना प्रिय बताया है।

गीता में स्वकर्म और स्वधर्म से ही परमात्मा की पूजा अर्थात् वर्ण व्यवस्था को 'गुण कर्म विभागशः' कहा गया है। हमारी सामाजिक संरचना को समझना विदेशी विद्वानों के लिए दुरुह है। वर्ण व्यवस्था को जाति व्यवस्था मानना तो घोर अन्याय होगा। गीता में कृष्ण ने स्वकर्म से परमात्मा की पूजा को सर्वश्रेष्ठ बताया है। वह इतनी प्रेरक है कि सभी कार्यों को समाज पुरुष की, परमात्मा की पूजा के पुण्यों के रूप में बदल देती है। गीता का कथन है कि मानव स्वकर्म से पूजकर परमसिद्धि को प्राप्त होता है–

यतः प्रवृत्तिभूतानां येन सर्वमिदं तत्तम्।[22]

इस प्रकार स्वधर्म को भी गीता महत्वपूर्ण मानती है। उसी से व्यक्ति और समाज का विकास संभव है। गीता परधर्म के आकर्षण को छोड़कर स्वधर्म को श्रेयस्कर मानती है–

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।[23]

गीता जिस उत्कृष्ट मानव को गढ़ने का प्रयत्न करती है उसमें सर्वत्र श्रेष्ठ शोभनीय गुणों की चर्चा है। गीता के अनुसार द्वेषहीनता, सबके प्रति मित्रता और करुणा, अहंकार का अभाव, लोक सेवा, क्षमाशीलता आदि महॉन् मानवीय गुण हैं। गीता में दोषों से बचने के लिए यथास्थान जो संकेत मिलते है, उनमें क्रोध की चर्चा उल्लेखनीय है–

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।[24]

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-I, Issues-35, YEAR-Jan-Mar. 2025

क्रोध से पूर्ण मोह उत्पन्न होता है और मोह से स्मरणशक्ति का विभ्रम हो जाता है। जब स्मरणशक्ति का भ्रमित हो जाती है तो बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धिनाश से आत्मनाश हो का जाता है।

गीता का तत्व ज्ञान भारतीय जनमानस में जिस गहराई से प्रतिष्ठित है उसका दर्शन कर्मयोगी भावना से अनुप्राणित भारतीय नारी में' घर–घर में देखा जा सकता है। कृष्ण ने कहा था– हे अर्जुन। तपस्वी से योगी बड़ा है, ज्ञानियों से भी सकाम कर्मी. अतः कर्मयोगी बनों। निस्सन्देह निष्काम कर्मयोग का संदेश देती गीता वर्तमान भारत ही नहीं, विश्व की विविध समस्याओं में दिव्य प्रकाश विकीर्ण कर सकती है।

सारांश यह है कि श्रीमद्भगवद्गीता स्वर्णिम सांस्कृतिक चेतना हेतु दिव्य साहित्य है जिसको ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए। 'गीता शास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत् प्रयतः पुमान्''। यदि कोई गीता के उपदेशों का पालन करें तो वह व्यक्ति जीवन के दुखों और चिन्ताओं से मुक्त हो सकता है। श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं– सब धर्मों को त्यागकर एकमात्र मेरी शरण में आओ, मैं तुम्हें समस्त पापों से मुक्त कर दूंगा।

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।[25]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *श्रीमद्भगवद्गीता (5/18)*
2. *श्रीमद्भागवत (7.5.23)*
3. *गीतामाहात्म्य –1*
4. *श्रीमद्भगवद्गीता (4/17)*
5. *श्रीमद्भगवद्गीता (16/7)*
6. *श्रीमद्भगवद् गीता (16/10)*
7. *श्रीमद्भगवद्गीता (16/18)*
8. *श्रीमद्भगवद्गीता (16/21)*
9. *श्रीमद्भगवद्गीता (10/41)*
10. *श्रीमद्भगवद्गीता (18/78)*
11. *श्रीमद्भगवद्गीता (2/7)*
12. *श्रीमद्भगवद्गीता (2/11)*
13. *श्रीमद्भगवद्गीता (2/13)*
14. *श्रीमद्भगवद्गीता (4/34)*
15. *श्रीमद्भगवद्गीता (17/3)*
16. *श्रीमद्भगवद्गीता (18/63)*
17. *श्रीमद्भगवद्गीता (2/47)*
18. *श्रीमद्भगवद्गीता (3/21)*
19. *श्रीमद्भगवद्गीता (17/20)*
20. *श्रीमद्भगवद्गीता (17/22)*
21. *श्रीमद्भगवद्गीता (5/18)*
22. *श्रीमद्भगवद्गीता (18/46)*
23. *श्रीमद्भगवद्गीता (3/35)*
24. *श्रीमद्भगवद्गीता (2/63)*
25. *श्रीमद्भगवद्गीता (18/66)*

*****